ध्यान

ध्यान करने के लिए भिन्न भिन्न मत पाए जाते हैं कोई कहता है कि भ्रूमध्य में ध्यान लगाना चाहिए, किसी का मत है कि बंक नाल में ध्यान लगाना ठीक है, कोई दसवें द्वार में और कोई हृदय में ध्यान लगाना ठीक समझते हैं । इस में भिन्न भिन्न मत होते हुए भी विशेषता हृदय ध्यान की ही वर्णन की गई है —

मनुष्य का शरीर पिण्ड अर्थात् छोटा ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड के सब पदार्थों के प्रति रूप इसमें हैं । शरीर के छः चक्र छः विशेष शक्ति और भाव के केन्द्र हैं और उन शक्ति और भाव की जग्रति में उन केन्द्रों पर धारणा करना बहुत बड़ी सहायता देती है । शरीर में हृदय चक्र उपास्यदेव के निवास का स्थान है और यही प्रेम भाव का भी केन्द्र है, क्योंकि उपास्य देव प्रेम रूप हैं और प्रेम ही में उनका वास रहता है । यह हृदय ही कारण शरीर के अभिमानी "प्राज्ञ" जो यथार्थ जीवात्मा है उसके वास का स्थान इस शरीर में है और साधना का एक प्रधान उद्देश्य यह भी है कि उस प्राज्ञ की जाग्रति हो और "विश्व" व "तेजस" उसके प्रतिबिम्ब अपने बिम्ब "प्राज्ञ" के साथ एकता प्राप्त करें । साधारण लोगों में प्राज्ञ की अवस्था सुषुप्ति की है और इस सुषुप्ति का हृदय से सम्बन्ध है । ब्रह्मोपनिषद् में लिखा है —

नेत्रे जागरितं विद्यात् कण्ठे स्वप्न समादिशेत् ।
सुषुप्त हृदयस्थंतु तुरीये तद्विलक्षणम् ॥

जागृत अवस्था में शरीराभिमानी का नेत्र में, स्वप्न के समय कण्ठ में, और सुषुप्ति काल में हृदय में वास रहता है किन्तु तुरीयवस्था में इससे विलक्षण स्थिति रहती है । अतएव यह परमावश्यक है कि श्री उपास्य देव का ध्यान हृदय में ही किया जाय, अन्यत्र कहीं भी नहीं क्योंकि यही उनके वास और प्रेम का स्थान है । शरीर में हृदय ही गोलोक वैकुण्ठ, साकेत, वृन्दावन, चित्रकूट, कैलास आदि हैं जहां श्री उपास्यदेव, सदा सर्वदा रहकर विहार करते हैं और जिस स्थान को कदापि नहीं त्यागते । अतएव यह हृदय एक बड़ा रहस्य का स्थान है और साधक की श्री उपास्यदेव ही की कृपासे इस हृदय में स्थिति होती है अन्यथा नहीं । इस हृदय में अष्ट दल कमल है जिसका शास्त्र में अनेक स्थान में प्रमाण है । बारह दल के कमल के हृदय चक्र का जो हठ योग के ग्रन्थ में वर्णन है वह इस हृदय चक्र से पृथक है । यहां तो केवल प्रेम, भक्तिके बल से और निष्काम सेवा द्वारा ही श्री उपास्यदेव की कृपा प्राप्त करने पर केवल उच्च उपासक ही पहुंच सकता है । अतएव जो भ्रूमध्य को हृदय से श्रेष्ठ समझकर भ्रूमध्य में ही धारणा ध्यान करते हैं और हृदय का निरादर करते हैं वह अवश्य भूल करते हैं ।

भ्रूमध्य में धारणा करने से वहां प्रकाश का देखना और उस प्रकाश में अनेक मूर्तियों का देखना आदि अनेक आन्तरिक अनुभव शीघ्र प्राप्त हो सकते हैं किन्तु उक्त प्रकाश भुवर्लोक का है, जो लोक इस भूलोक की अपेक्षा माया से अधिक

आच्छन्न है और तमोगुणी, रजोगुणी देव देवियों से परिपूर्ण है । अतएव उक्त लोक और उसके निवासियों से सम्बन्ध होने पर साधन की पारमार्थिक हानि होना पूरा सम्भव है, और उसके द्वारा यथार्थ पारमार्थिक लाभ नहीं हो सकता । साधक को प्रारम्भ में भ्रूमध्य में धारणा करना प्रायः बड़ा हानिकर हो सकता है यह निश्चित है कि श्री भगवान् की प्राप्ति का मार्ग हृदय में धारणा ध्यान द्वारा है, अन्य नहीं । जब कभी श्री उपास्यदेव के यथार्थ दर्शन-स्पर्श होंगे वे हृदय ही में होंगे और ऐसे ही होते हैं और यही यथार्थ है । अन्यत्र ध्यान करना हानिकारक है और बिना हृदय का आश्रय लिए उसको उपास्य देव का आन्तरिक यथार्थ अनुभव न होगा । यह हृदय आनुमानिक नहीं यथार्थ है किन्तु इसका यथार्थ स्थान स्थूल शरीर में नहीं है सूक्ष्म शरीर में है और स्थूल शरीर में केवल इसका प्रति रूप गोलक है । स्थूल शरीर में जो धुक धुकी का स्थान है और जहां सदा सर्वदा स्पन्दन होता रहता है वह यथार्थ हृदय नहीं है और न वह स्थान इस शरीर में हृदय की समानता में है । उस धुक धुकी के स्थान पर कदापि धारणा नहीं करनी चाहिए क्योंकि वहां ध्यान करने से धुक धुकी का वेग बढ़ जायगा और उस कारण हानि होगी ।

उपासक जब साधना के मार्ग में अग्रसर होता है तो उसको अपने उपास्य देव की परा शक्ति की कृपा से उनके प्रकाश की प्राप्ति होती है और तब उसकी हृदय गुहा उक्त प्रकाश की जागृति और प्रादुर्भाव द्वारा प्रकाशित होती है और तब उसको यथार्थ हृदय चक्र दीख पड़ता है ऐसे दृष्टि होने के पहले साधक को वक्षःस्थल और उदर के बीच में जो गोलक है उसके भीतर हृदय को मानकर धारणा ध्यान करना चाहिए, किन्तु स्मरण रहे कि चित्त स्थूल शरीर के मांस मय स्थान में नहीं रक्खा जाय किन्तु अन्तर में हृदयाकाश का होना चित्त करके उसकी धारणा की जाय । उस गोलक के भीतर हृदयाकाश में हृदय गुहा चिन्तन कर धारणा की जाय किन्तु स्थूल शरीर के मांसमय हृदय की भावना उसमें एक दम न रहे ।

अष्ट दल कमल साधारण रीति से उलटा अर्थात् नाल ऊपर और दल नीचे करके रहता है किन्तु साधना द्वारा उस उलटे को सीधा करना पड़ता है जिस में कि मूल नीचे और दल ऊपर हो । यदि उपास्यदेव को हृदय कमल में स्थित मान कर ध्यान किया जाय तो कमल का आकार सीधा समझकर करना चाहिये अर्थात् दल ऊपर और नाल नीचे । हृदय का अर्थ ही है "हृदि अयं हृदयं" अर्थात् उपास्यदेव हृत्स्थान में वास करते हैं अतएव उनकी हृदय संज्ञा हुई :—

स वा एष आत्मा हृदि तस्यैतदेव निरुक्तं हृदयमिति
तस्मात् हृदयमहरहर्वा एवंवित्स्वर्गलोकमेति ॥ छा० उ०

निश्चय से यह परमात्मा हृदय में है उसका यही निरुक्त है हृदय में यह आत्मा है उस हेतु हृदयम् यह नाम है । ऐसा जानने वाला ब्रह्म को प्राप्त करता है ।

ईश्वरः सर्वभूतानाम् हृद्देशेर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ॥ गीता

हे अर्जुन ! श्री भगवान् अपनी माया करके देहाभिमानी प्राणियों को अपने अपने कर्मों में नियुक्त करता हुआ सम्पूर्ण भूतों के हृदय में निवास करता है ।

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ श्वेता० उ०

उस परमात्मा का रूप नेत्रों से नहीं देखा जाता है किन्तु शुद्ध मन से उस हृदयस्थ को शुद्ध हृदय में पाकर अमर हो जाते हैं ॥

अंगुष्ठ मात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः ॥ कठ उ०

अंगुष्ठ मात्र अन्तरात्मा पुरुष सदा लोगों के हृदय में सन्निवेशित रहता है ।

तस्मिन्नन्तर्हृदये यथा व्रीहीर्वा यवो वा ... स एष ... सर्वस्येशानः
सर्वस्याधिपतिः सर्वमिदं प्रशास्ति यदिदं किंच ॥ बृहदारण्यक उ०

उस हृदय के बीच में अति सूक्ष्म ब्रह्म व्याप्त है, वह ब्रह्म सबका ईश सर्वाधिपति है और जो कुछ है सबका शासन वही कर रहा है ॥

इस तरह के अनेक प्रमाण शास्त्रों में मिलते हैं उनसे और महात्माओं के अनुभव से यही सिद्ध होता है कि भगवान् हृदय में निवास करते हैं । इस लिए भगवान् की प्राप्ति के लिये हमको हृदय ही में ध्यान करना उचित है । हृदय के द्रवीभूत होने पर ही भगवान् के दर्शन सम्भव हैं । यह हृदय गम्य है अतएव साधक को उचित है कि आरम्भ ही से हृदय में ध्यान लगाना चाहिए ।